

कबीर और तुलसी काव्य के संदर्भ में दलित-विमर्श

प्रमिला देवी

सहायक प्रवक्ता, कन्या महाविद्यालय, खरखौदा, सोनीपत, हरियाणा, भारत।

प्रस्तावना

भारत विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों का देश रहा है। विभिन्न मत मतान्तरों को मानने वाले लोग यहाँ रहते हैं। अनेकों पंथ, जातियों, उपजातियों में भारतीय समाज बटा हुआ है, फिर भी भारत एक समाजवादी, समतावादी एवं धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है। भारत में ऋषि, मुनियों, संतों, महापुरुषों, समाजसुधारकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। समय-समय पर समाज और देश को सही राह दिखलाने का इन्होंने सराहनीय प्रयास किया है।

साहित्य का जन्म उसके सृजकों की धार्मिक, दार्शनिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से होता है। जिन समाजों की जैसी समस्याएं होती हैं उन्हीं के अनुसार उनके समाधान खोजे जाते हैं और साहित्य में जिन समस्याओं का वर्णन और उल्लेख होता है उनका आधार भी विचारात्मक ही होता है। साहित्य का मूल आधार दर्शन होता है। इतिहास लेखन के प्रति भारतीय दृष्टिकोण आदर्शमूलक एवं अध्यात्मवादी रहा है जिसमें सत्य के साथ शिव और सुंदर का समन्वय करने की ओर ध्यान केन्द्रित रहा। महाभारतकार ने इतिहास को ऐसा पूर्ववृत्त माना है जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष अर्थात् पुरुषार्थ चतुष्टय का उपदेश देता है तो पुराणकार महापुरुषों के चरितगान को इतिहास के रूप में स्वीकार करता है।

भारतीय साहित्य का स्वरूप विचित्र रहा है। यहाँ हिंदू धर्म-ग्रंथों का हिंदुओं के साहित्य पर, मुस्लिम धर्म का मुस्लिम साहित्य पर, अमिट प्रभाव पड़ा है अनेक लेखकों ने धर्म-ग्रंथों का काव्यों में भावानुवाद किया है। अपने आदर्शों को समयानुसार अपनी भाषा, अपनी शैली और अपनी विधा में प्रस्तुत किया है।

वर्तमान समय में 'दलित' शब्द चर्चा का विषय बना हुआ है। 'दलित' शब्द सुनते ही मन-मस्तिष्क में असंख्य प्रश्न उठने लगते हैं जैसे दलित कौन है? दलित की पहचान क्या है? क्या कथित निम्न जातियाँ ही दलित हैं? या उन्हीं की भांति आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक रूप से पिछड़े अन्य सभी मनुष्य जिनमें महिलाएं भी शामिल हैं, दलित हैं? हिंदी शब्दकोशों में 'दलित' शब्द का अर्थ इस प्रकार मिलता है— "दलित शब्द मसला हुआ, मर्दित, दबाया हुआ, रौंदा या कुचला हुआ विनष्ट किया हुआ आदि है।" किंतु यह शब्द पर्याय का मामला नहीं है, बल्कि 'दलित' शब्द एक सजीव श्रमरत बड़ी संख्या में मौजूद मानव-समूह है। इसे उसकी जीवन-स्थितियों में देखा जाए न कि शब्दाडंबरों में। यँ तो वर्ण-व्यवस्था काल से ही सवर्णों और दलितों का विचार-संघर्ष चलता आ रहा है। इस संघर्ष की द्वंद्वत्मकता में साहित्य पैदा होता रहा है और युगानुरूप साहित्य प्रवृत्तियाँ परिवर्तित होती रही हैं। 'दलित' शब्द आधुनिक युग की देन अवश्य है, परंतु इससे पूर्व इन जातियों को अनार्य, बहिष्कृत, अछूत और अस्पृश्य कहा जाता था तब भी इनका सामाजिक-सांस्कृतिक अस्तित्व पृथक ही था। समाज, साहित्य और परिस्थितियों में लगातार परिवर्तन होता रहा है, उसी तरह दलितों की पहचान बदलती रही है परंतु हर युग में उन्हें सवर्णों से संघर्ष करना पड़ता रहा है। वह चाहे सिद्धों, नाथों और बौद्धों के काल हो अथवा कबीर, रैदास और तुलसीदास का समय,

अस्पृश्य और बहिष्कृत जातियों के लेखकों ने संत साहित्य में अपनी अलग पहचान बनाई थी। जातिभेद की पीड़ा के मुक्तभोगी होने के कारण उन्होंने अपनी रचनाओं में ईश्वर को मध्यस्थ रखकर समता और बंधुता की बातें कीं।

कबीर काव्य में दलित वर्णन

संत काव्य परंपरा में रैदास, पीपा, दादू, मलूकदास के अलावा सिद्धों एवं नाथों की परम्परा को भक्तिकाल में उत्कृष्ट स्थान दिलाने का श्रेय कबीरदास को जाता है। निर्गुण पंथियों में अधिकांश वर्ण-व्यवस्था के सताए हुए लोग ही थे। अतः उनका विरोध भी ब्राह्मणवाद और उनके वैदिक कर्मकांड से था, जिसे वे समूल रूप में मिटाना चाहते थे। कबीर तो इस व्यवस्था से इतने पीड़ित थे कि वह दूसरा विकल्प ढूँढ रहे थे।

कदाचित् भारतीय ग्रामीण समाज-व्यवस्था वर्ण-व्यवस्था काल से ही दलितों के लिए कारागार जैसी रही है। वहाँ समता की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती। कृषि स्वामित्व वाली जातियाँ अथवा सवर्ण समाज उन्हें अपनी शर्तों पर गांव में रखना चाहता था। दलित इस आजीवन कारावास से मुक्ति के लिए गांव छोड़ना चाहता है। कबीर ने भी गांव छोड़ने की वेदना को अभिव्यक्ति दी थी —

“अब न बसूं इहि गांइ गुसाईं।
तरे नवगी खरे समाने हो राम।”

हिंदू वर्ण-व्यवस्थावादी समाज को नकारते हुए कबीर एक नए समाज की कल्पना करते हैं—

“जहवां से आयो अमर वह देसवा।
पानी न पौन धरती अकसवा, चाँद न सूर न रैन दिवसवा।।
बाम्हन छत्री न सूद बैसवा, मुगल पठान न सैयद सेखवा।
दास कबीरा ले आए संदेसवा, सार सबद गहिं चलो बहिं देसवा।”

भगवान के निर्गुण रूप को अपनाकर जाति पद्धति का खण्डन करते हुए कबीर निम्नवर्ग में आशा का संचार करते हैं —

“जाति न पूछो साध की, पूछ लीजिए ज्ञान,
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।”

कबीर ने सभी शूद्रों को दलित माना है। कबीर के अनुसार ब्राह्मण और दलित शूद्र एक ही जाति से उत्पन्न व्यक्ति है। अतः इनमें न कोई ब्राह्मण है और न कोई शूद्र। ये सभी मानव है।

“एक योनी से सब जग उत्पन्न, का बामन का सूदा।”

उस परम ज्योति से उत्पन्न सभी मनुष्य एक ही महावृक्ष के पत्र एवं

फल, फूल के समान हैं। कबीर ने जातिवाद का दृढ़ता से खण्डन किया है। दलितों का पक्ष लेकर ऊंची जाति के लोगों पर अत्यंत तीक्ष्ण शस्त्र चलाने वाले कबीर दलित वर्ग के प्रबल समर्थक हैं। सबसे कठोर शब्द का प्रयोग दलितों के हिमायती बनकर ब्राह्मणों के प्रति कबीर ने किया है।

“जो तुम ब्राह्मण ब्राह्मणियां जाया, और राह से काहे न आया।”⁶

तुलसी काव्य में दलित वर्णन:

यह बड़े दुख की बात है कि जिस वर्ण-व्यवस्था का पुरजोर विरोध मध्यकाल में संत-कवियों के द्वारा किया गया उसी मध्यकालीन परिप्रेक्ष्य में रामभक्त कवि तुलसीदास ने (1532-1623) फिर उसी वर्ण व्यवस्था पर जोर दिया जो पहले थी। उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ रामचरितमानस में संतों की विचारधारा की घोर निंदा करते हुए कहा है –

“ब्रह्मज्ञान बिनु नारी नर, कहत न दूसरी बात।
कौड़ी लागी लाभ बस, करहि विप्र गुरघात।।
बादहिं सूद्र द्विजन्ह सत हम तुमसे कछु घाटि।
जानइ ब्रह्म तो विप्रवर, आखि देखावहि डाटि।।”⁷

शूद्र किसी भी तरह से कम नहीं है। वे डांट कर आँखें दिखाते हुए कहते हैं जो ब्रह्म को जानता है, वही ब्राह्मण है। लेकिन तुलसीदास जी कहते हैं कि समाज की मर्यादा के लिए वर्ण-व्यवस्था अति आवश्यक है। वे ब्राह्मणवादी प्रथा का पूरा पक्ष लेते हुए कहते हैं—

“सापत ताड़त पुरुष कहता, बिप्र पूजहि अस गावहि संता।
पूजिय विप्र सील गुणहीना, सूद्र न गुनं ग्यान प्रवीना।।”⁸

अर्थात् शाप देता हुआ, ताड़ना करता हुआ तथा कठोर वचन कहता हुआ भी विप्र (ब्राह्मण) पूज्य है, ऐसा संतों ने कहा है और ब्राह्मण शील और गुणहीन भी पूजनीय है तथा शूद्र गुणवान व ज्ञानी भी पूजनीय नहीं है।

“द्विज निंदक बहु नरक भोग करि।जन जनमह बायस सरीर धरि।।”⁹

अर्थात् जो व्यक्ति ब्राह्मणों की निंदा करता है वह अनेक नरकों को भोगता है तथा काक योनि में जन्म लेता है। अन्य स्थान पर तुलसीदास जी वर्णन करते हैं –

“तिन्ह महँ द्विज, द्विज महँ श्रुतिधारी। तिन्ह महँ निगम धरम अनुसारी।।”¹⁰

तुलसीदास ने वर्ण व्यवस्था का समर्थन करते हुए यह उक्ति कही है कि मनुष्यों में मुझे ब्राह्मण प्रिय है और ब्राह्मणों में वे जो शास्त्रों के अनुसार धर्म का आचरण करते हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि कौन आधुनिक है जो ज्ञानवान है वही श्रेष्ठ है। एक तरफ मानवीय मूल्यों का समर्थन है तो दूसरी तरफ अमानवीयता। वर्ण-व्यवस्था के तहत भारतीय समाज चार वर्णों में विभाजित रहा है – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ऋग्वेद के एक रूपक के आधार पर कहा जा सकता है कि आरंभ में उक्त वर्गीकरण का मुख्य आधार श्रम-विभाजन का आर्थिक सिद्धांत था, किंतु आगे चलकर इस व्यवस्था में रूढ़ात्मकता आ गई। वर्ण-व्यवस्था कर्म मूलक के स्थान पर जन्म मूलक हो गई और अनेकानेक जातियों की उत्पत्ति भेद-भावना की पृष्ठभूमि बन गई।

जो समाज के लिए अभिशाप सिद्ध हुई। मध्यकाल में दलित शब्द प्रयोग में नहीं था, उसके स्थान पर अन्य शब्द अस्तित्व में थे। आधुनिक युग में ईश्वर की मध्यस्थता को प्राथमिकता न मान भारतीय संविधान को आधार बनाया गया है, परंतु दलितों की मांगे तथा जरूरतें वहीं हैं। समता नहीं आ सकी है। इसलिए समस्याएं बरकरार हैं। समाधान की अनुपस्थिति ने आंदोलनों को बढ़ावा दिया है।

संदर्भ

1. रामचंद्र वर्मा – संक्षिप्त शब्द सागर, मूल संपादित— नागरी प्रचारिणी कांशी सभा, पृ. 468
2. कबीर और रामानंद : किंवदंतियां – डॉ. शिवकुमार शर्मा, पृ.35
3. कबीर:डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का प्रक्षिप्त चिंतन— डॉ. धर्मवीर, पृ. 37, वाणी प्रकाशन, संस्करण 2000
4. कबीर वचनावली, पृ. 122
5. कबीर वचनावली, पृ. 122
6. कबीर ग्रंथावली – श्यामसुंदर दास, पृ. 205
7. रामचरितमानस, तुलसीदास
8. रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड चौपाई—33
9. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, चौपाई 122
10. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, चौपाई 86